(21)

विभा

कुपथ है कंटकित, पाषाणयुत, तम की सघनता है।
गहन है गर्त, बहुधा वृत्तियों कीर द्रुत प्रवणता है।।
जिसे पथ का प्रदर्शक, मानकर, अब तक रहे चलते।
उसी मन को, यहाँ देखा अहा सौ बार भी छलते ।।१

सकल अर्जन महा, श्रमजात निष्फल पात्र है रीता ।
नही पहुँचे कहीं बस, परिधि पर ही काल है बीता ।।
लगा हर पल कि अगला पल बनेगा सौख्य का दाता ।
बढ़ा दृढ़ है न टूटा, आस से मन का कभी नाता ।।२

समय निरपेक्ष है, दुःख को बहाता और सुख को भी ।
सकल आकार हरता, स्थूल आणुतर वृत्ति रूख को भी ।।
नवल आता नहीं बनकर न होता यह पुरातन है।
यही सुप्रवाह शाश्वत है, यही अपरा सनातन है।। 3।।

न मानो तुम तिमिर को शत्रु, या फिर वृत्त पर गति को।
उपेक्षित छद्मपथ दर्शक करो, बस मान दो मति को ।।
जगत निरपेक्ष होकर अब, विभा को ही पुकारों तुम ।
स्वयं को चिर जुगुप्सित, गहन कर्दम से उबारो तुम ।। 4 ।।

करो स्वागत विभा का, विभु यही संसार कत्र्री है।
अमल आह्लाद की दात्री, यही अवसाद हत्र्री है।
अरे त्यागो अहम् यह हो सकी, कब बंदिनी किसकी ।
उतर आती स्वयं उर में, विकल आहूति है जिसकी ।। 5 ।।

प्रभाकर देखता तुमको दुखी, होकर प्रभा आकर।
प्रभा को भेजता सकरूण, पकड़ लो शीघ्र उसका कर ।।
तुम्हें अधिकार है पूरा, न भूलो दिव्यता अपनी ।
अमलता, चेतना, आनन्द, तुममें भव्यता कितनी ।। 6 ।।

-शिव कुमार मिश्र-